हमारे प्रकाशन

(१)

सुविहितयोगिजनाग्रिम-
पदधिः खरतरखराचारः ।
अमृतधर्मं गुरूणामन्तेवासी जनाधिपाराध्यः ॥

(२)

क्षमाधरश्रेष्ठतमो गरिष्ठः,
कल्याणमूर्त्तिर्गुणरत्नखानिः ।
श्री वर्द्धमानस्य जिनेश्वरस्य,
पदप्रभावी विबुधेशपूज्यः ॥

(३)

क्षमाकल्याणमूर्त्तात्मा, नित्यकल्याणकारकः ।
जयताज्जयतात्सैष, क्षमाकल्याणपाठकः ॥

—स्व. जिनकवीन्द्रसागरसूरिः

प० पू०, प्रातः स्मरणीय, जं. यु. प्र. भ. जैनाचार्य

१००८ स्व. श्रीमज्जिनहरिसागरसूरीश्वर

महाराज साहब

के कर कमलों में

सादर समर्पण

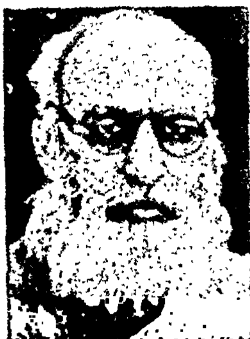
सौभाग्यसौन्दर्यगते तरुण्याः, वक्षःस्थले राजति हारयि

तथैव श्री जोधपुरे प्रदेशे, श्री 'रोहिणा' ग्राम मनोहरोऽस्ति।

श्री प्राकृतिकसौम्यसुन्दरतया ग्रामोऽति स सुन्दरः,

तस्मिन्नगरे ज्ञातवंशभुरियागोत्रे पवित्रे शु

आसीत् श्री हनुमंतसिंह इति नामेन ख्यातो वहुः,



द्धेय, विभाते स्मरणीय आचार्य देव
। जिनहरिसागर सूरीश्वरजी
म. सा.

यश्रीरुपगणप्रतिभः निपतन् प्राप्त दीक्षा-प्रताप,
रैः प्रीतिं प्रयाति प्रतिपन्नजगतां प्राणिनां प्रेक्षमाणः ॥४॥

गीति शुभे मुहूर्तंनगर्यं नामकेन गच्छागतं,
व्याकरणालंकारादिकोशनिपुणो जैनागमे सो हरिः ।
त्यागमदर्शनोत्सुकमना सम्यक्त्वधा सद्गुणी,
लीलानंगमहानिधिकनन्दनं तापाग्र हृत्यापत्नम् ॥६॥

श्री रत्नचोमस्तोमनयने माने सहस्ये शुभे,
उत्कृष्टानन्दानित स प्रसन्नमनसा शार्थंसमायानताम् ।
श्या श्री जिनपूतपादकमलं काले प्रभाते तथा,
धृत्वा दिव्यगुणाभिर्मर्जितवरः सूरीश्वरः सौ हरिः ॥७॥

स्मस्तु हरिसागरस्य सुगतस्याभिनूपैर्भोः,
श्रीखरतरसंहिते मुनवरः ज्ञानांगचन्द्रापते ।
कविः सुकृती कृती गुरुवरस्यारिन्नूझमणिः,
शिष्येण रचितञ्च मणुपपदेऽस्तु प्रवेणामुना ॥८॥

क्षमाकल्याणचरितम्
भक्तिभावनयासमर्पितम् भवते ।
हे ! हर्षविध सूरीश्वर ।
मान् "मणि"वत् प्रकाशवान् कुर्यात् ॥९॥

—मणिप्रभसागरः



[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चातुर्मास दौरान आप श्री के शिष्य रत्न मुनिराज
मणिप्रभसागरजी से सम्पर्क बढ़ा। सच है विद्वान गुरु
शिष्य भी विद्वान होते हैं। मणिप्रभसागरजी म.
साहित्य सृजन में अनुपम विज्ञता रखते हैं। उनके पास
पाण्डुलिपियों में मुझे यह चरित्र बेहद पसन्द आया
ऐसे चरित्र की कमी का भी अहसास हुआ। इसी निमित्त
लेकर मैंने गुरुवर से इसके प्रकाशन की अर्ज की और
प्रसन्नता है कि आज उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी म.

रा रचित संस्कृत के १२१ श्लोकों का हिन्दी में सरल, शोधित एवं अनुवादित रूप जो उनकी १७ वर्ष की अल्पायु उनके जन्म दिन के अवसर पर ही यह कार्य पूर्ण हुआ पके सम्मुख है। इस पुस्तक को सभी प्रकार से श्रेष्ठ रने के लिए इसमें क्षमाकल्याणजी म. सा. द्वारा चेत चैत्यवन्दन भी सम्मिलित किये गये हैं।

प. पू. विदुषी आर्या श्री सज्जन श्री जी म. सा. का ी वन्दन सहित आभारी हुँ जिन्होंने इस पुस्तक के लिए ाक्कथन लिख भेजा।

पुस्तक को और अधिक महत्वपूर्ण बनाने में माननीय ी अगरचन्दजी नाहटा का विशेष सहयोग रहा। जिनके यासों से हमें क्षमाकल्याणजी म. सा. के जीवन चरित्र के षय में उपयोगी 'भूमिका' स्वरूप सामग्री प्राप्त हुई है। मैं माननीय नाहटाजी का हृदय से आभार व्यक्त करना अपना र्तव्य समझता हूं।

आशा करता हूँ यह चरित्र आपके लिए उपयोगी एवं भविष्य के लिए संग्रहणीय बन सकेगा।

जय वीर!

विजया दशमी-बाड़मेर
सं २०३६

शुभेच्छु
बंशीधर तातेड़

जन का रक्षक बना हुआ है। अपनी विशिष्टता तथा निकता के कारण श्रमण संस्कृति के सिद्धान्त विश्वधर्म की योग्यता से समन्वित है।

भगवान महावीर प्रभु के परिनिर्वाणानन्तर भी संस्कृति की पीयूषधारा को प्रवाहित करने वाले महान् न-प्रभावक आचार्य हुए हैं। उन्हीं का यह भगीरथ न है कि आज भी वह धारा अजस्र रूप से बहती हुई व के मानस क्षेत्रों का सिंचन करती रही है और उन्हें प्रमोद, कारूण्य आदि के पुष्प पत्र फलोत्पत्ति से न्न कर भाव जीवन प्रदान करती हुई अमरता की ओर ण करने योग्य बना रही है।

उन्हीं प्रभावक पुरुषों में प्रस्तुत ग्रंथ के चरित्रनायक महोपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी महाराज का भी अपना विशिष्ट स्थान है।

..........उनके चरित्र के मूल लेखक, अनुवादक का स स्तुत्य है, एवं वह प्रयास स्तुत्य से उठकर अतिस्तुत्य

अजमेर — इन्हीं शुभाकांक्षाओं के साथ,
आश्विन कृ. १३ — वीर शासन सेविका
वि. सं. २०३६ — **आर्या सज्जन श्री**

दो शब्द

संसार एक रंग शाला है । उस रंगशाला के वि प्रांगण में अनेक महापुरुष जन्म ले चुके हैं ।

ऐसे भी अनेक रत्न हो चुके हैं, जिन्होने अपने व का निष्ठा के साथ पालन किया, एवं चले गये । परन्तु ऐसे अनासक्त योगी हो चुके है जिन्हें दिवंगत हुए शता व्यतीत हो गई, फिर भी सूर्य की तरह उनका नाम भी चमक रहा है, और श्रद्धा के साथ स्मरणीय हो रह

धर्म की स्थापना तीर्थंकर करते है किन्तु उनके कथित एवं प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार महापुरुषों की ओजस्वी वाणी एवं सशक्त कलम से है । उनकी ही ओजस्वी वाणी एवं सशक्त कलम से संसार के पतित प्राणियों का उत्थान हो रहा है । भा आज ऐसे ही महान पुरुषों के कारण अन्य देशों के गौरवान्वित है । ये पृथ्वी के सूर्य है जिनके प्रकाश से हास के पन्ने आज भी चमक रहे है । परम प्रसन्नता विषय है कि हमारे परमोपकारी श्रद्धेय गुरुदेव जिनके की नाम क्षेप से दीक्षित होते ही हमारा मस्तक पावन जाता है उनका जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहा है ।

ग्रन्थ की उपयोगिता लेखक के मधुर छन्दावलि निबद्ध श्लोकों के कारण स्वतः सिद्ध है ।

(ले० विदुषी आर्या प्रवर्तिनी जी श्री प्रमोद श्री
म. सा. की शिष्या आर्या विद्युत प्रभा श्री)

मिका : उपाध्याय क्षमाकल्याणजी

ले०—अगरचन्द नाहटा

श्वे० जैन संघ में खरतरगच्छ की सेवाएँ चिरस्मरणीय गी। समय समय पर अनेक आचार्यों, मुनियों व श्रावकों दि ने जैन शासन की विविध प्रकार की महान् उल्लेखनीय ाये की हैं। १६ वीं शताब्दी में खरतर गच्छ एक गीतार्थ विद्वान् ऐसे हो गये हैं जिनकी समाज एवं हित्य को विशिष्ट देन रही हैं। उनका नाम है उपाध्याय माकल्याण जी।

न्म—

पं० नित्यानंदजी विरचित क्षमाकल्याण चरित (संस्कृत द्य) के अनुसार आपने बीकानेर के समीपवर्ती गांव केसर-सर के ओसवाल वंशीय मालु गौत्र में सं० १८०१ में जन्म हण किया था। जन्म नाम खुशालचन्द था।

दीक्षा ग्रहण—

नित्यानन्दजी के लिखित चरितानुसार आपने संवत् १८१२

में अमृतधर्मजी से दीक्षा ग्रहण की । पर [illegible] के अनुसार सं० १८१५-१६ के वैशाख वदी २ [illegible] आसाढ़ वदी २ जैसलमेर में खरतर गच्छाचार्य श्री जि सूरिजी के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आप प्रतिबोधक और गुरुवाचक श्री अमृतधर्मजी थे । अ शिष्य से आप प्रसिद्ध है ।

गुरु परम्परा—

श्री जिनभक्ति सूरिजी के प्रीतिसागरजी नामक शु थे, उनके विद्वान शिष्य अमृतधर्मजी थे जिनका उसमें किया जा चुका है । क्षमाकल्याणजी उन्हीं के सुशिष्य अब उपरोक्त तीनों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है

(1) जिन भक्ति सूरि—

जिनसुखसूरि के पट्ट पर श्री जिनभक्ति सूरि आसीन इनके पिता सेठ गोत्रीय साह हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपा नामक ग्राम के निवासी थे । इनकी माता थी हीरसु सम्वत् १७७० ज्येष्ठ सुदी तृतीया को आपका जन्म था । जन्म नाम आपका भीमराज था और सम्वत् १ माघ शुक्ला नवमी को दीक्षा ग्रहण करने के बाद नाम भक्ति क्षेम डाला गया । सम्वत् १७८० ज्येष्ठ

ह दिन त्रिपुरा में श्री संघ कृत महोत्सव से गुरु-
पने हाथ से इन्हें पट्ट पर बैठाया था। तदनन्तर आ-
: देशों में विचरण किया। सादड़ी आदि नगरों
यों को (हस्तिआलनादि प्रकार से [!]) परास्त
जयलक्ष्मी को प्राप्त करने वाले, सब शास्त्रों में
श्री सिद्धाचल आदि सब महातीर्थों की यात्रा करने
: श्री गूढा नगर में अजित-जिनचैत्य के प्रतिष्ठापक
वी, सकल विद्वज्जन शिरोमणि आचार्य श्री जिन
: के (श्री राजसोमोपाध्याय श्री रामविजयोपाध्-
र श्री प्रीतिसागरोपाध्याय आदि कई शिष्य हुए।
: देश मंडन श्री मांडवीविंदर में संवत् १८०४ में
चतुर्थी को दिवंगत हुए। इस रात्रि को आपके
र की भूमि (श्मशान) में देवों ने दीपमाला की।

सागरजी—

जाता है कि आप संविग्न पक्षी (वैराग्यवान् यति),
दी सूचीके अनुसार सं० १७८८ में आपकी दीक्षा
पका जन्म का नाम प्रेमचन्द था। सं० १८०१
नभक्ति सूरि के साथ, श्री जिनलाभसूरि के सं०
जनगर, सं० १८०५ में गूढा, सं० १८०६ में
आप भी साथ थे। संवत् १८०८ काती वदी १३

वीकानेर में आप स्वर्ग सिधारे। आपकी पादुकाएं जैस॰
की अमृत धर्म स्मृतिशाला में प्रतिष्ठित है (दे. हमारा वी
ने जैन लेख संग्रह २ (४४) इसके अतिरिक्त आपके सा॰
में ज्ञातव्य अन्य कोई प्रमाण नहीं मिला। सं० १६७५ मि
सर वदी १४ का आपको लिखित प्रति क्षमा कल्याण भं॰
में है।

(३) वाचक अमृतधर्म जी—

कच्छ देश के ओशवँशीय वृद्ध शाखा में आपका
हुआ था। आपका नाम अर्जुन था। दीक्षा सं० १॰
फागण सुदी १ में जिनलाभ सूरिजी ने भुज में दी। श॰
यादि तीर्थों की आपने यात्रा की थी। सिद्धान्तों के ॰
द्दहन किये थे। आपका चित्त संवेग रंग से आपूरित थ
फलतः आपने कुछ नियम ग्रहण किये थे जिसका विव
नियम पत्र में मिलता है। उसके अन्त में लिखा है कि स॰
१८३८ माघ सुदि ५ को आपने सर्वथा परिग्रह का ॰
कर दिया था।

सम्वत् १८२६ में श्री जिनलाभसूरिजी ने अपने पास ॰
कर सं० १८२७ में आपको वाचनाचार्य पद से ॰
किया था। इसके बाद यानि सं. १८२६ से १८४०

च्छनायक श्री जिनलाभसूरि और श्री जिनचन्द्रसूरि
रहे थे। संवत् १८४३ में आप पूर्व प्रान्त में पधारे
हां के पवित्र तीर्थों की यात्रा की एवं धर्म-प्रचार
वहां आपके उपदेश से कई नवीन प्रासाद बने थे।
गर स्वर्ण के दंड-ध्वज-कलशादि चढाये गये थे।
१८४८ में पटना में सुदर्शन श्रेष्ठि के देहरे के समीप
वेश्या की) जगह २००) में जमींदार से खरीद की
ह में स्थूलिभद्रजी की देहरी भी आपके उपदेश से
। आपने ही उसकी प्रतिष्ठा की थी। सम्वत् १८५०
नेर चौमासा किया। सम्वत् १८५१ में जैसलमेर
स किया और वहीं माघ सुदि ८ को आपका स्वर्ग-
आ। आपका रचित 'विशेष संग्रह संक्षेप" व कई
दि और कई लिखित प्रतियां बीकानेर के ज्ञान भंडारों
त हैं।

लमेर में "श्री अमृत धर्म स्मृति-शाला' है। उसमें
क्ति सूरि, प्रीतिसागरजी व अमृतधर्मजी की पादुकाएं
मृतधर्मजी सम्बन्धी क्षमा कल्याण रचित व लिखित
' वाला लेख विशेष महत्व का है (देखिये हमारा
नेर जैन लेख संग्रह' लेखांक २८४१) उपरोक्त अष्टक
ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृष्ठ ३०७ पर भी
का है।

विद्या गुरु—

आपका विद्याध्ययन उपाध्याय राजसोम और उ
रूपचन्द (रामविजयजी) के तत्वावधान में हुआ था
समय ये दोनों पाठक बड़े प्रख्यात विद्वान थे. इनक
ज्ञात संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

उपाध्याय राजसोमजी—

खरतरगच्छ की क्षेमकीर्तिशाखा में १८ वीं शत
उ० लक्ष्मीवल्लभ अच्छे विद्वान और सुकवि हो ग
उनके गुरु भ्राता वाचक सोमहर्षजी के शिष्य वाच
समुद्र के शिष्य उ० कपूरप्रियजी के आप शिष्य थे।
१७५४ में आप दीक्षित हुए। जन्म नाम राजू था
१८०१ के पूर्व आपको गच्छनायक की ओर से उपाध
प्रदान किया गया था। सम्वत् १८२५ में आप तत्काल
समस्त उपाध्यायों में वृद्ध होने के कारण 'महोपाध
से समलंकृत थे।

आपकी शिष्य परम्परा १९८० तक अविच्छिन
आ रही थी, अब कोई विद्यमान नहीं रहा। आपकी
कृतियें इस प्रकार है—

श्रुतज्ञान पूजा (संस्कृत)

सिद्धाचल स्तवन, गा० ४८ सं०१७६७ फा०व० ७

नवकार वाली (१०८ गुण) स्तवन

सांगानेर पद्मप्रभ स्तवन, गा० २२

छंद रासो, गाथा ३४

ग्रहलाघव सारणी टिप्पणीं (पत्र)

सम्वंत् १७६४-१८०४ में लिखित आपकी प्रतियें भी ानेर भण्डारो में है।

ाध्याय रामविजयजी (रुपचन्द)—

खरतरगच्छ की क्षेमकीर्ति शाखा में कविवर जिनहर्ष वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हो गये है। उनके शिष्य चन्द (सुखवर्द्धन) के शिष्य दयासिहदी के आप सु- य थे। संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के सुकवि और मर्मज्ञ विद्वान थे। आपके रचित कृतियों संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

(१) भर्तृहरि शतक त्रय वालावबोध सम्वत् १७८८ ती वदी १३ सोजत में रचित (अभयसिह राजा के मंत्री जेड़ गोत्रीय जीवराज के पुत्र मनरुप के आग्रह से)

(२) [illegible] शतक [illegible] १[illegible] वन शुक्ला १५ (उपरोक्त मंत्री पुत्र [illegible]) [illegible] राज्ये।

(३) समयसार (नाटक) [illegible] आश्विन, स्वर्णगिरी [गणधर (चोपड़ा) [illegible] हेतवे] प्रकाशित

(४) गौतमीय महाकाव्य (११ सर्ग) सं० [illegible] जोधपुर (रामसिंह राज्ये) प्रकाशित

(५) गुणमाला प्रकरण संवत् १८१४ ([illegible] सूरि की आज्ञा से)

(६) चित्रसेन पद्मावती चौपाई संवत् १८१४ सु० १०

(७) चतुर्विंशति दिन स्तुति पंचाशिका (गाथा संवत् १८१४ भाद्रवा वदी ३ बीकानेर।

(८) भक्तामर टवा संवत् १८११ जेठ [illegible] काला ऊना (शिष्य पुण्यशील* विद्याशील के आग्रह से)

*संवत् १८३३ आ० सु० ५ मुनरा बंदरा में [illegible] पास कई नियम ग्रहण किये थे।

९) नवतत्त्व टवा-संवत् १८३४, अजीमगंज, सबल-
नार्थं।

१०) आबू यात्रा स्तवन सम्वत् १८२१ (जिनलाभ
र ८५ यतियों के साथ)

११) फलौधी पार्श्व स्तवन संवत् १८२३ मिगसर
(जिनलाभ सूरि साथ)

१२) साधु समाचारी संवत् १८१६ (शिष्य विद्या-
र्थं)

१३) नेमि नव रसो

१४) सिद्धांत चंद्रिका वृत्ति *(सुबोधनी पूर्वार्द्ध)
००

(१५) अल्पाबहुत्व स्तवन गाथा २४

(१६) साधवाचार पट्त्रिंशिका

(१७) विवाह पडल भाषा (पत्र २)

(१८) वीरायु ७२ स्पष्टीकरण सं० १८३७ आ० सु०
ता नागोर (?)

*जयदत्त के पत्र में -अभप्रस्थेन श्री पाठकैः रूपचंद्रारकैः
ट सहस्त्र प्रमिता चंद्रिका वृत्ति लिख्यति ।। बीकानेर
तुङ्ग सेः पं० देवचन्द्र लि०।

(१६) पार्श्वस्तवन सटीक (पत्र १ [illegible]
गाथा ८)

(२०) नेमि नाम माला भाषा टीका सं०
स्थान काला ऊना

(२१) लघुस्तव टब्बा, सं० १७६८

(२२) सप्तश्लोकी टबा, सं० १८३१, पाली

(२३) सन्निपातकलिका टबा, १८३१, पाली

(२४) कल्पसूत्र बालावबोध सं० १८११, यं

(२५) मुहूर्त्त मणिमाला सं० १८०१ (?)

(२६) समुद्रबंद्ध कवित सं० १७६७, बोल्ला

(२७) गौड़ी पार्श्व छन्द गाथा १२३

(२८) जिन सुख सूरि मजलस सं० १७७२

(२९) कल्याण मन्दिर टब्बा, सं० १८११ कं

(३०) दुरियर स्तोत्र टबा सं० १८१३ विल

रूपचन्दजी के सम्बन्ध में मेरा स्वतन्त्र लेख
व सप्तसिंधु में छप चुका है।

अन्य साधनों से ज्ञात होता है कि सम्वत १
पूर्व आपको वाचक पद प्राप्त था और सम्वत् १८२
उपाध्याय पद से अलंकृत हो चुके थे संवत् १८१
तक आप जिनचन्द्रसूरीजी के साथ ही विहार में र

ाध्ययन—

मेरे अनुमान से संवत् १८१८-२२ तक आपने उपा-
। राजसोमजी के पास विद्याध्ययन किया। फिर राम
य जो श्री जिनलाभसूरि के साथ थे उनके पास संवत्
२५ तक या पीछे भी विद्याध्ययन किया होगा।

ार—

सम्वत् १८२६ से १८४० तक वाचक अमृतधर्मजी श्री
लाभ सूरिजी एवं श्री जिनचन्द्र सूरिजी के साथ विचरे
यथासम्भव आप उस समय भी अपने गुरु के साथ थे।
जनलाभ सूरि के विहार स्थानों के के लिये 'ऐतिहासिक
काव्य संग्रह' में २४ दोहे पृ० ४१४—१६ में छप चुके हैं।
म्वत् १८२४ में बीकानेर में थे। तदनन्तर १८२६ से
३२ तक गुजरात-काठियावाड़ घूमे। सम्वत् १८३४
व मारवाड़ के तीर्थों की यात्रा करके सं० १८३८ से
तक आप जैसलमेर में रहे। विद्याध्ययन के अनन्तर
अधिकांश अपने गुरु वाचक अमृतधर्मजी के साथ ही
ार करते थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।
त् १८४३ में पूर्व देश की ओर विहार भी आपने अपने
थी के साथ ही किया था। सम्वत् १८४३ में वालचर

में आपका चौमासा हुआ। और वहां भगवती जैसे गम्भीर सूत्र की वाचना (व्याख्यान) की थी। सम्वत् तक आप अपने गुरु श्री के साथ पूर्व प्रां. में ही करते हुए धर्मोपदेश व धर्म प्रचार करते रहे। पूर्व में विहार करने से आपकी भाषा में हिन्दी का प्रभाव गोचर होता है। इसके पश्चात् वहां से विहार कर वी (सम्वत् १८५० में) पधार गये थे। सम्वत् १८५ चातुर्मास बीकानेर कर सम्वत् १८५१ का चातुर्मास गुरु श्री के साथ ही जैसलमेर किया और वहीं सम्वत् १ माघ शुक्ला ८ को वाचक अमृतधर्मजी का स्वर्गवास इसके पहले और पश्चात् आपने अनेकों स्थानों में कर धर्म प्रचार किया, ग्रन्थ निर्माण किया, तीर्थो यात्रायें की, जिनालय, जिनबिम्बों की प्रतिष्ठायें की। उ संवतानुक्रम से भिन्न भिन्न सूचि-मय निर्देश किया गया अतः यहां समुच्चय आदि से आपके विहार की सम्वता से यथाज्ञात सूचि दी जाती है जिससे आपके उद्यत का भली-भांति परिचय मिल जायगा।

अब सं० १८२८ से आपके विहारानुक्रम की सूचि जाती है—

(१८२४ बीकानेर (क्षमाकल्याण लिखित प्रति)
१८२५ पार्श्वनाथ यमक बद्ध स्तव
१८२६ माघव वदि ३ शंखेश्वर यात्रा स्तवन
१८२७ माघव सुदि १२ सूरत, शीतल जिन स्तवन
१८२८ (सत्यपुर), तर्क संग्रह फक्किका
१८२६ चैत्र वहुल, राजनगर, भू धातु वृति
१८२६ राजनगर, गौतमीय काव्यवृति प्रारम्भ।
१८३०फागण सुदि६,जीर्णगढ़,खरतरगच्छ पट्टावली।
१८३० पो० घोघा स्तवन
१८३१ मांडवी
१८३३ श्रावण सुदि ५, मुनरावंदिर, क्षमाकल्याण पार्श्वे पुण्यवीर नियम ग्रहण
१८३३ कार्ती सुदि ५, मनरावंदर, में स्वयं लिखित प्रति
१८३४ जेट सुदि १ आबू यात्रा स्तवन
१८३४ वैशाख वदि ५ महेवा यात्रा स्तवन
१८४५ नभ—सुदि ५, पाटोधी, चौमासी व्याख्यान
१८३६ फागण वदि ६, लोद्रवा स्तवन
१८३८ जैसलमेर श्रावक विधि प्रकाश
साधु विधि प्रकाश

" १८३९ नभ सुदि ५, यशोधर चरित्र, जेसलमेर
" १८४२ बालूचर चौमासा, भगवती सज्झाय
" १८४३ फागण वदि ११, समेत शिखर यात्रा
" १८४४ वैशाख सुदि ५, बालोचर, सम्भव जि
प्र
" १८४४ भादवा वदि ७ बालोचर, अमृतक्षमा
" १८४५ माघ सुदि ११ महिमापुर, सुविधि स्तव
" १८४७ माघ वदि २ प.वापुरी यात्रा स्तवन
" १८४७ माधव सुदि ५ महाजन टोली. पार्श्वस्तव
" १८४७ विजय दशमी महिमापुर, थावच्चा चौप
श्रु० वहुल ११ मकसूदाबाद, सुक्त रत्नाव
" १८४८ चै. सुदि पाटलीपुर तीर्थयात्रा स्तव श्लोव
" १८४८ पाटलीपुर स्थूलिभद्र थापना सझाय गाथ
" १८४८ काती वदी ५ पटना, अमृत धर्म क्षमा
" १८४८ पो सुदि १५ पावापुरी हरजीलाल गुल
सह यात्रा स्तवन
" १८४८ विपुलाचल अहमता स्थापना गयुक्त ७
" १८५० माघ सुदि १, बीकानेर पत्र
" १८५० भादवा वदि ५, बीकानेर "
" १८५० नभ सुदि ७, बीकानेर, गोव विचार वृति

१८५१ आसाढ वदि २ जेसलमेर के लिये आदेश पत्र
१८५२ नभ सुदि ११, जेसलमेर, गौतमीय काव्य टीका
१८५३ श्रावण सुदि १, बीकानेर पत्र
१८५३ वैशाख वदि १२, बीकानेर, प्रश्नोतर साद्धे शतक भाषा
१८५४ मिगसर सुदि ६, गिरनारस्तव, घाणेराव संघ सह
१८५४ चैत सुदी ८ शत्रु जय स्तवन
१८५४ श्रा० सुदि ३, पालीताणा, अम्बड चरित्र
१८५५ भादवा सुदि ११, सूरत पत्र
१८५५ फागण वदि १२ श्रीपुर अंतरिक्ष स्तवन
१८५६ जेठ सुदि १३, नागपुर, चैत्य वंदन चौवीसी
१८५६ भादवा सुदि १५, नागपुर से वाचक क्षमा-कल्याणजी का पत्र।
१८५८ जेठ वदि ४, जैसलमेर, जिनहर्ष सूरि पत्र
१८५८ भादवा सुदि १०, बीकानेर
१८५८ चैत वदि १, लोद्रवा स्तवन
१८५६ जेसलमेर विज्ञान चन्द्रिका
१८६० श्रावण सुदि २ बीकानेर, जैसलमेर अष्टाह्निका व्याख्यान

,, १८६० फा० सु० ७, बीकानेर, जैसलमेर आदि
,, १८६० पो० वदि ११, जैसलमेर ।
,, १८६० वैशाख सुदि ७, देवीकोट स्तवन,
,, १८६१ आषाढ़ सुदि ६, बीकानेर
,, १८६१ माघ वदि ११, देसणोक, प्रतिष्ठा
,, १८६१ फागण सुदी २, जयपुर, सुपार्श्व स्तवन
,, १८६२ आ० सुदि १५, जयनगर, पत्र में उल्लेख
,, १८६२ चैत सुदि ८, जयपुर, क्षमाकल्याण
लिखित
,, १८६६ फाल्गुण सुदि १५, शंखेश्वर मारवाड़
संघ सह यात्रा
,, १८६६ चैत सुदि १५, गिरनार स्तवन
,, १८६६ काती जय नगर (श्रा० व्रत ग्रहण)
,, १८६६ वैसाख सुदि २, शत्रुंजय यात्रा स्तवन
,, १८६७ फागण वदि १३, कृष्णागढ़ । १८६७ आ
वन सुदी ५, पाली,
,, १८६७ माघव ६ मंडोर प्रतिष्ठा स्तवन
,, १८६७ आश्विन , पत्र,
,, १८६७ फागण सुदि ८ किशनगढ़ पत्र
,, १८६८ चैत सुदि ८ किशनगढ़

१८६८ भादवा व. ३ किशनगढ़

१८६८ वैशाख वदि १४, जोधपुर गोडा दुखने का पत्र

१८६९ जेठ वदि ३, देशणोक पत्र

१८६९ पो वदि ८, वीकानेर "

१८६९ माघ वदि ८, देसणोक, "

१८६९ मिगसर वदि १०, वीकानेर, "

१८७० श्रावण सुदी ११, वीकानेर, "

१८७० फागण सुदी १०, देसणोक "

१८७० वैसाख सुदी ८, अजमेर "

१८७० भादवा सुदी ७ वीकानेर "

१८७१ माघ सुदी ७ वीकानेर "

१८७१ भादवा वदी २ वीकानेर "

१८७१ मिगसर वदी ८, वीकानेर "

१८७२ भादवा वदि १२, वीकानेर "

१८७२ मिगसर वदी १४, वीकानेर "

१८७३ मि० व० ८, वीकानेर "

१८७३ जेठ वदि २, "

१८७३ आ० वदि १४, "

पद प्राप्तिः—

संवत् १८५५ में गच्छनायक जिनचन्द सूरिजी ने

आपको अपने निकट बुलाकर 'वाचक' पद प्रदान किया

उपाध्याय पद प्राप्ति—

जिनचन्द सूरिजी का सम्वत् १८५६ में स्वर्गवास के अनन्तर श्री जिन हर्षसूरि उनके पद पर स्थापित गये। उन्होंने गच्छ में आपकी योग्यता सविशेष देख (१८५८ के पूर्व) आपको उपाध्याय पद से अलंकृत कि सम्वत् १८५८-५६ में आप गच्छ नायक के साथ जैस में ही थे।

ग्रन्थ निर्माण—

व्याकरण, न्याय आदि में आपका अच्छा पांडित्य ही पर जैन सिद्धांतों (आगमों के गूढ रहस्यों को भी) में आपकी असाधारण गति थी। खरतरगच्छ में उस आप सर्वोपरि गीतार्थ माने जाते थे। अनेकों विद्वान् प्रश्नों या सन्देहों का समाधान आप से करते थे। नायक आचार्य भी आपकी सैद्धान्तिक सम्पति को समझते थे। कई यतियों ने आपके पास विद्याध्ययन पांडित्य और गीतार्थता प्राप्त की थी। प्रश्नों के सप्र उत्तर देने में या निराकरण करने में आप सिद्धहस्त

१८५५ फाल्गुन कृष्णा १२, श्रीपुर-, अंतरिक्ष
स्तवन गाथा

१८५६ ज्येष्ठ शुक्ला १३, नागपुर, चैत्यवंदन
जिन नमस्

१८५८ चैत्र वदि १, लोद्रवा, पार्श्वनाथ स्तवन

१८५९ जैसलमेर, विज्ञान चन्द्रि

१८६० सूचि (श्रावण) सुदि २, जैसलमेर, अ
ठ्याह

१८६० फाल्गुन शुक्ला ११, बीकानेर, मेरु
अक्षय तृतीया होरिका व्या

१८६० वैशाख शुक्ला ७, देवीकोट, अट्पण (

१८६१ माघ शुक्ला ५, देशणोक सुविधि (

१८६१ फाल्गुन शुक्ला २, जयपुर, सुपार्श्वनाथ

१८६[illegible] फाल्गुन शुक्ला १५, [illegible], पा

[illegible] गत गहू

[illegible] चैत्री पूनम, गिरनार, नेमिनाथ प्र०

[illegible]

[illegible]

८६६ वैशाख सुदी २, शेत्रुञ्जय स्तवन गाथा १५ प्र०
८६७ माघ वदि ६, मंडोवरे, पार्श्व प्रतिष्ठा
स्तवन प्र०
८६६ विजय दशमी, बीकानेर, श्रीपाल चरित्र वृति
ग्र० ५०२२ प्र०
१८६६ माघ शुक्ला १३, अजमेर, संभव (प्रतिष्ठा)
स्तवन प्र०
१८७१ माघ सुक्ला १, बीकानेर, सुपार्श्व (प्रतिष्ठा)
स्तवन प्र०
१८७३ बीकानेर, समरादित्य, चरित्र
(अपूर्ण)

क्षमाकल्याणजी के रचित संस्कृत और राजस्थानी की लघु रचनाएं महिमा भक्ति ज्ञान भंडार में है इनमें से आदि का एक संग्रह ४० वर्ष पूर्व श्री हरिसागरजी ने ...न्दन स्तवन संग्रह के नाम से प्रकाशित किया था।

बिना संवत के उल्लेखनीय ग्रन्थ

जिन स्तुति श्लोक ७७ ग्रन्थाग्रन्थ १४८
चतुर्विंशति चैत्यवन्दन (श्लोक ७३) २
प्रतिक्रमण हेतवा भाषा, विक्रमपुर

४) श्राद्ध प्रायश्चित विधि, बालूचर
५) पर समयसार विचार संग्रह (?)
६) विचार शतक बीजक
७ जयतिहुअण भाषा बद्धकाव्य, पद्य ४१,
(कातेला
गूजरमल भ्राता तनसुख
८) हित शिक्षा द्वात्रिंशिका (सं. १८६८ पूर्व)
६) संग्रहणी सपर्याय (प्रति महिमा भक्ति भंडा
१६) पार्श्व स्त्रोतवृति आदि

अनुपलब्ध

१ चौबीसी काव्य की गेय पद्धति
२ पंच तीर्थी स्तोत्र
३ प्रश्नोत्तर शतक
४ नग्न पाखण्ड मत स्वरूपाष्टक
५ मुक्तावलि फक्किका प्रश्न
६ समाप्ततंत्र सेग
७ सूक्ति रत्नावली भाषा
८ अलोयणा विधि भाषा

चौबीसी वृत्ति

(उल्लेख पुरानी ग्रन्थ सूची में)

तिष्ठाएँ

आपने अनेक जिनालय व जिन-बिम्बों की प्रतिष्ठा कराई थी उनमें कतिपय ये हैं–

) सं. १८४४ वैशाख सुदी ५, अजीमगंज, संभव

) सं. १८४५ माघ सुदि ११, महिमापुर, सुविधि

) सं. १८४७ वैशाख सुदि ५, महाजन टोली, पार्श्व

) सं. १८४८ पाटलीपुर, स्थूलिभद्र स्थान

) सं. १८६० वैशाख सुदि ७, देवीकोट, ऋषभ

) सं. १८६१ माघ सुदि ५, देशणोक, सुविधि

) सं. १८६६ माघ सुदि १३, अजमेर, संभव

) सं. १८७१ माघ सुदि ११ बीकानेर, सुपार्श्व

) सं. १८६८ वैशाख सुदि १२, जोधपुर,

१०) सं. १८६७ मागसर ६, मंडोवर पार्श्व,

आपके प्रतिष्ठित यन्त्र और पट्ट भी अनेक प्राप्त हैं।

व्रत ग्रहण—

आपके पास अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत ग्रहण

किये थे जिनमें से कुछ ये है—

१) संवत् १८३३ श्रावण सुदि ५, मनरावंदिर, पं॰ पुण्य
गणि नियम पत्र

२) संवत् १८४७ मिगसर वदि ५, श्रावक मूलचंदा
आपका नित्य स्मरण करने का

३) संवत् १८५० आषाढ वदि १३, श्राविका लालां बा

४) संवत् १८५० फाल्गुण वदि ३, श्राविका फूलां बा

५) संवत् १८५६ आषाढ़ सुदि ५, श्राविका चम्पेली
१८५४ अ. व. जयनगर सुराणा मगनीराम व्रत

६) संवत् १८६६ काती जयनगरे, वाफणा गौडीदास
परमानन्द १२ व्रत।
१८६६ जे, व. ३ सिद्धि लूणिया तिलोकचन्द
व्रत ग्रहण

७) संवत् १८६६ मिगसर वदि १०, बीकानेर, श्रावि
चंपा

तीर्थ यात्रा—

आपके रचित स्तवनादि से आपने अनेक तीर्थों
यात्रा की, ज्ञात होता है जिनमें मुख्य ये है–

(१) शत्रुंजय सम्वत् १८५४ चैत्र सुदि ८, सं. १८६६ [वै]ाख सुद २

(२) गिरनार सवत् १८५४ मिगसर सुदि ६ सवत् १८६६ चैत्री पूनम

(३) आबू, सं० १८३४ जेठ सुदि १

(४) संखेश्वर, सं० १८६६ फाल्गुण सुदि १५, सं० १८२६ [मा]घ वदि ३

(५) नाकोड़ा (महेवा) संवत् १८३४ वैशाख वदि ५

(६) घोघा नवखंड पार्श्वनाथ सवत् १८३०

(७) लोद्रवा, संवत् १८३६ फाल्गुन वदि ६, सवत् १८५८

(८) पावापुरी, सवत् १८४७ माघ वद २ सवत् १८४८ पौ सुदि १५

(९) सम्मेत शिखर, सवत् १८४३ फाल्गुण वदि ११

(१०) श्रीपुर अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, सवत् १८५५ फाल्गुन [सु]दि १२

(११) जैसलमेर, देवीकोट, जोधपुर, अहमदाबाद, सूरत, [म]ालुचर, महिमापुर, गाडलीपुर, महाजनटोली, मकसूदाबाद, [ब]लणोक, बुरहानपुर, अजमेर, दिल्ली, अजीमगंज, फलवृद्धी [खं]भात, गौड़ी, जीरावली, पार्श्व, क्षत्रियकुंड, राजगृही [आ]दि स्थानों की यात्रा भी स्तवनों से भलिभांति सिद्ध है।

गिड़िये राजराम व संघवी लूणिया का संघ—

रेल्वे द्वारा पर्यटन प्रारम्भ होने के पूर्व शत्रुं
तीर्थों की यात्राएं करना अति दुष्कर था। जब कभी
धनाढ्य लाखों रुपयों का खर्च व मार्ग का पूर्ण प्रबन्ध
की योजना करता तभी ये यात्राएं की जा सकती थी।
सुअवसर बहुत समय के पश्चात और महान् पुण्य
प्राप्त होता था। अतः उस समय सभी धार्मिक
सम्मिलित होकर यात्रा का परम लाभ प्राप्त करने को
रहा करते थे। महीनों के महीनों मार्ग में व्यतीत हो
उस समय के धार्मिक जनों के तीर्थ यात्रा के भावोल्ल
आज कल्पना करना ही कठिन हो गया है।

संघपति शुभ मुहूर्त निश्चित करने के बाद अ
[illegible] दूरवर्ती स्थानों में आमन्त्रण पत्रिकाएं भेज
आस पास के भावुक जन हजारों की ही नहीं पर ल
संख्या में वहां एकत्र हो जाते । साधु-साध्वियां भी
और हजारों की संख्या में एकत्र होते । दूरवर्ती (स
[illegible]) अपने यहां से एक छोटा संघ लेकर

तानुसार बड़े संघ के साथ सम्मिलित होते । इस
एक बड़े संघ के साथ अनेकों स्थानों के सैकड़ो या
छोटे छोटे संघ मार्ग में आकर सम्मिलित हो जाते ।

संवत् १८६६ में भी ऐसा ही विशाल संघ संघवी
चंद लूणिया और जोधपुर निवासी राजाराम गिड़िये
पतित्व में निकला था । उसका ज्ञातव्य संक्षिप्त वृतांत
कार है :–

जयपुर से पं. चरित्र विजय पं. चरित्र नन्दन आदि ने
पुर के वाचनाचार्य चन्द्रभाणजी को संवत् १८६५)
वदि १ को पत्र दिया उसमें लिखा है कि–

"तथा इहां थीं श्री सिद्धाचलजी की यात्रा निमित्तें संघ
हजार १० या १५ लोक हुसी । उपाध्याय श्री क्षमा-
णजी जावसी और पिण बीकानेर रा साधु वर्ग जाव-
अर म्हारे पिण परिणाम छै जी । पर तुम्हारे पत्र
निस्तुक पड़सीजो । अर आपरे पिण यात्रा रा परिणाम
तो मगसर सुदि ८ ताई तथा ११ तांइ आया रहिज्यो
साथ हगांम रो छै जी । सिघवी तिलोकचन्द लूणिया
राम गिड़ीया जोधपुर वालो एवं दोय जणा सिंघ
रे सैं । लाख ६ रुपीया तेवड्या छै जात्रा निमतें सो

मिगसर वदी २ के रोज तो सर्व सहर निजीक है
कंकोत्री मेलसी अर पोह सुदी १५ किसनगढ सु
भूला पाली होसी तिहां सु माह सुदी ५ मी पाली सु
चलजी नै गिरनारजी प्रमुख कु विदा होसी जो। श्री
श्रावक श्राव(क)णी घणा साथ होसी जी।

(पत्र के ऊपर)

उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी गणि की वंदना
ज्यो अर कह्यो छै श्री सिद्धगिरिजी रा यात्रा सा
आवेज्यो।"

(पत्र हमारे संग्र

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी रचित शत्रुञ्जय
ज्ञात होता है कि–

जयपुर के वोहरा धर्मसी के पुत्र कपूरचन्द
परिवार एवं स्वधर्मी के साथ संघ प्रयाण कर किश
विशाल संघ के साथ आ मिले, मार्ग में श्री चि
पार्श्वनाथ एवं फलवर्द्धी पार्श्वनाथजी की यात्रा की
भक्ती पूजा की।

मरुधर प्रान्त के फलवद्धि नगर निवासी रा

ाड़ीया राजाराम एवं संघवी तिलोकचन्द लुणीया
ाकाला । कुकमपत्री भेज संघ को आमन्त्रित किया ।
प्रथम रथ जात्रा की वहां मिरजापुर, जयपूर,
ऽ, बीकानेर, मेड़ता, सौभत, नागोर, जैसलमेर,
पाली, जालोर, पालणपुर, भिनमाल के संघ
त हुए । मार्ग में जिनदर्शन, चैत्योद्धार, देव द्रव्य
धर्म प्रभावना करते हुए पाटण आये । वहां
ुख्य आपके संघ सन्मुख आये और संघ ने वहां
न,देव-द्रव्य वृद्धि की । वहां के शंखेश्वर पार्श्वनाथजी
गुण सुदि १५) यात्रा की । पाटण, राधनपुर, अह-
का संघ भी साथ हो गया और गिरनार पर संवत्
के चैत्र शुक्ला १५ को सर्व संघ ने यात्रा की । इस
ख़रतर भट्टारक श्री जिनहर्ष सूरिजी, खरतराचार्य
चंद सूरिजी, (उपकेश) कंवले श्री पूज सिद्धसूरि
सम्भवतः पाली के खरतर श्री पूज्य कुल ४ । आचार्य
क्षमाकल्याण जी मुनि साथ थे । हाथी, घोड़े, रथ,
नेक साथ थे और संघ को रक्षा के लिए सैनिकों का
ान्ध था ।

र्ग के जिन मन्दिरों के दर्शन और धर्म प्रभावना करता

हुआ संघ शत्रुञ्जय के समीप आया। गिरिराज को दर्शन होने माघ पर माणिक मोतियों से बधाया, आने पर वृत्त महोत्सव हुआ और वैशाख शुक्ला [illegible] ने श्री शत्रुञ्जय तीर्थाधिराज की यात्रा कर अपने कृत्य माना।

इस संघ का वर्णन जसराज भट ने निशाणी है ... दे० मुनि हजारीमल [illegible]

इन दोनों संघवियों के विषय में ओसवाल इतिहास में लिखा है कि

राजाराव गिडीया

(पृ० ६५३) "गिडीया परिवार में सेठ रा[illegible] गडिया जोधपुर में बहुत नामी साहुकार हुए। इ[illegible] १८७२ में मोरगा को निट्टा चुकाने के समय मानसिंहजी को बहुत बड़ी इमदाद दी थी। इ[illegible] [illegible] का विशाल संघ भी निकलवाया था।"

[illegible] में इनको जोधपुर निवासी और [illegible] लिखा [illegible] है जिसका कारण यह [illegible] [illegible] पुत्र [illegible] था और [illegible] [illegible] नहीं रहने लगे। [illegible]

आपने नवीन पार्श्व जिनालय भी बनाया है और
प्रतिष्ठा भी उपाध्यायजी के हाथों से ही सम्वत्
माधव ६ को कराई थी। यह उन्हीं के रचित
से स्पष्ट है। सम्वत् १८६८ के वैशाख शुक्ला को
र में उपाध्यायजी ने प्रतिष्ठा कराई थी वह भी
त: इन्हीं के निर्मित जिनालय की होगी। यथा स्मरण
गिरनार के पगथिये भी बनवाये थे जिसका शिला-
हां रास्ते में लगा हुआ है।

ी तिलोकचन्दजी लूणीया

आपके विषय में ओसवाल जाति के इतिहास में लिखा
(पृ० ३३४) "सेठ तिलोकचन्दजी ने अजमेर से शत्रु-
का संघ निकाला। यह संघ हजारों श्रावक, सैकड़ों
साध्वियों तथा फौज पलटन इत्यादि से सुशोभित था।
घ के निकालने में आपने हजारों लाखों रुपये खर्च
ये। उस समय शत्रुञ्जयजी के पहाड़ पर आगार-शाह
का बहुत उपद्रव था जिससे शत्रुञ्जय की यात्रा बन्द
ई थी आपने ही सबसे पहले इस यात्रा को पुनः चालू
। इसके स्मारक में आज भी उनके लूणीया वंशज
ीर के नाम की एक सफेद चादर चढ़ाते हैं। सेठ

तिलोकचन्दजी लूणीया के हिम्मतरामजी तथा सु...
नामक दो पुत्र हुये। इनमें सेठ हिम्मतरामजी के चां...
तथा जेठमलजी नामक २ पुत्र हुये। इन बन्धुओं में,से...
मलजी अपने काका सुखरामजी के नाम पर दत्तक गये...
चांदमलजी लूणीया के पुत्र दीनान बहादुर सेठ थान...
लूणीया थे।"

विद्यादान—

आपके शिष्य प्रशिष्य तो आपके पास पढते ही... अन्य शाखा के यति गण भी आपके तत्वाधान में ... कर विद्वान हुए थे। जिनमें से सुमतिवर्द्धन व ... विशेप उल्लेखनीय हैं ।

सुमति वर्द्धन—

आप जैन तत्वज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता थे। ... रचनाऐं निम्नलिखित है–

१. समरादित्य चरित्र, स'वत् १८७४ माघ सु... जयमेरु नगरे ।

२. उत्तमकुमार चरित्र ।

३. नवतत्व स्वरुप यंत्र ।

४. कर्म ग्रन्थ यंत्र ।

चैत्यवंदन भाष्य यंत्र ।

जीव विचार यंत्र ।

दण्डक यंत्र ।

संघयणी यंत्र ।

क्षेत्र समास यंत्र ।

नवकार यंत्र ।

इनके शिष्य चं रित्र सागर ने क्षमाकल्याणजी रचित ... प्रकाश का भाषानुवाद संवत् १८६६ में नागोर ... था।

(उपाध्याय क्षमाकल्याणजी समरादित्य चरित्र की रचना ... और स्वर्ग सिधारे अत. आपने उक्त ग्रन्थ को १८७४ माघ शुक्ला ३ को पूर्ण किया)

...चन्द—

श्री जिनभक्ति सूरि शाखा के रामचन्दजी के ... थे। आपने भी उपाध्यायजी के पास विद्याध्ययन ... था अतः अपने ग्रंथ में विद्यागुरु रूप से उनकी प्रशंसा ... । आपके रचित ग्रंथ द्वय और एक स्तवन प्राप्त है—

१. प्रश्नोत्तर सार शतक संवत् १८८४ (?) जयपुर ।

२. दीवाली व्याख्यान, संवत् १८९६, ज्येष्ठ शुक्ला १३, अजीमगंज ।

तिलोकचन्दजी लूणीया के हिम्मतरामजी तथा मुखराम नामक दो पुत्र हुये। इनमें सेठ हिम्मतरामजी के चांदमल तथा जेठमलजी नामक २ पुत्र हुये। इन बन्धुओं में,सेठ चाँ मलजी अपने काका मुखरामजी के नाम पर दत्तक गये। रे चांदमलजी लूणीया के पुत्र दीनान बहादुर सेठ थानमल लूणीया थे।"

विद्यादान—

आपके शिष्य प्रशिष्य तो आपके पास पढते ही थे प अन्य शाखा के यति गण भी आपके तत्वाधान में अध्यय कर विद्वान हुए थे। जिनमें से सुमतिवर्द्धन व उमेदचन्‍ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

सुमति वर्द्धन—

आप जैन तत्वज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता थे। आपकी रचनाएँ निम्नलिखित है-

१. समरादित्य चरित्र, संवत् १८७८ माघ सुदि १३ जयमेरु नगरे ।

२. उत्तमकुमार चरित्र ।

३. नवतत्व स्वरुप यंत्र ।

४. कर्म ग्रन्थ यंत्र ।

५, चैत्यवंदन भाष्य यंत्र ।

६- जीव विचार यंत्र ।

७. दण्डक यंत्र ।

८. संघयणी यंत्र ।

९- क्षेत्र समास यंत्र ।

१० नवकार यंत्र ।

इनके शिष्य चरित्र सागर ने क्षमाकल्याणजी रचित विधि प्रकाश का भाषानुवाद संवत् १८९६ में नागोर नाया।

(उपाध्याय क्षमाकल्याणजी समरादित्य चरित्र की रचना कर स्वर्ग सिधारे अतः आपने उक्त ग्रन्थ को त् १८७४ माघ शुक्ला ३ को पूर्ण किया)

चन्द—

श्री जिनभक्ति सूरि शाखा के रामचन्दजी के आप थे। आपने भी उपाध्यायजी के पास विद्याध्ययन था अतः अपने ग्रंथ में विद्यागुरु रुप से उनकी प्रशंसा है। आपके रचित ग्रंथ द्वय और एक स्तवन प्राप्त है—

१, प्रश्नोत्तर सार शतक संवत् १८८४ (?) जयपुर।

२. दीवाली व्याख्यान, संवत् १८९६ ज्येष्ठ शुक्ला १३, अजीमगज।

३. सम्मेत शिखर स्तवन, गा० १० संवत् १
माघ ब॰

स्वर्गवास—

संवत् १८६८ में आपको वृद्धावस्था के कारण श॰ ॰ग्कि अस्वस्था का विशेषत; अनुभव होने लगा संवत् के चेत्र शुक्ला ८ को कृष्णगढ से बीकाने आर्या खुस्याल श्री को पत्र में लिखा है, कि—' की शिथिलता है। राजाराम ने प्रतिष्ठार्थं बुलाया फिर वैसाख वदि १४ जोधपुर से उन्हीं को पत्र ॰ उसमें लिखा है कि वैसाख वदि १ को पिछले विहार कर अजमेर, मेड़ता, वड़लु होते हु (द्वादशी) को यहां आये हैं, सुदि १२ को प्रति॰ ज्येष्ठ तक यहां रह फिर बीकानेर आने का प॰ है, गोडों में वहुत दर्द है। शारीरिक-शिथिलता(है" इत्यादि।

संवत् १८६९ में आप बीकानेर पधार गये थे। १८६९ में आपको हरस रोग की वहुत अशाता हुई। पर आपको शारीरिक महत्व नहीं था।

औषधादि उपचार विशेष नहीं किया करते और शरीर के ऐसी अस्वस्थता (वेदना) पर भी नित्य भांडासरजी नेमिनाथ जी के मन्दिर (दूर होने पर भी) दर्शनार्थं जाया करते थे। इसके लिये संवत् १८७१ के कातिक कृष्णा ३ को देशनोक से पं० ज्ञाने ने पत्र दिया है उसमें लिखा है —

"आपके हृदस की तकलीफ असाता घणी सुणी सो दुखी भया। सरीर का जतन मूल करावो नहीं सो ठीक नहीं बगसो रामजी वठै है उना पासे जतन करावसी सरीर वृद्ध है आप भाँडासरसी नेमिनाथजी पधारो सो भली न छे। चोवीसटा, आदिसरजी प्रमुख देहरा सोइ नेमीनाथ है, आप उतनी खेचल न करावसो" इत्यादि

संमत् १८७३ के श्रावण कृष्णा ६ को आपने जैसलमेर ज्ञानानंदादि को पत्र दिया था उसमें लिखते है —

"हमारे फोडा-फुन्सी की अशाता बहुत रहती है, मुकीम भीखणदास हर्शोपशमन की पुडियां देते है अब लेहु नहीं जाता है। अब हरस की साता है पुडी २१ ली, फोडों की कुछ कसर है सो (ठीक) हुय जासी" इत्यादि। मिति भादव कृष्ण ५ को उपरोक्त स्थान और मुनियों के दिये पत्र में-

"हरग का नेहु वग हुआ को दिन १०-१२ हुए, फोड़ा फुम्सी २/३ रहा है, सो मिट जासी। पित्त को दरद तथा आगको आ जा (जो ? र ती आगी तरे है नेहु बहुत गया। सरीर सुस्त है, व्याख्यान उत्तराध्ययन १४ वां अध्ययन वांचे है, समरादित्य चरित्र पाना ८५ भया, चौथे भव के १ पानो वाकी है" इत्यादि।

इन पत्रों से आपकी शारीरिक परिस्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार शारीरिक अस्वस्थता वश सं० १८७३ के पौष कृष्णा १४ मंगलवार को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। दादाजी के स्थान में आपकी चरण पादुकायें और श्रीमंधर स्वामी मंदिर में आपकी मूर्ति है, जिनके लेख हमारे बीकानेर जैन लेख संग्रह के लेखांक ११८२, २०२ में छप चुके है। आपकी एक सुन्दर मूर्ति सुगनजी के उपासरे में भी है।

चित्र

आपके कई तत्कालीन चित्र भी प्राप्त है।

१. बृहत् ज्ञान भण्डार मे समुदाय-सह-इसका ब्लाक "तर्क-संग्रह-फक्किका" में छपवा दिया है।

२. दिल्ली से आपके रचित "सुमतिनाथ स्तवन

लक में बहुत वर्ष पूर्व रंगीन चित्र छपा था जिसका छोटा
लाक हमारे "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में छापा गया
।

३. नवपद यंत्र व क्षान्तिरत्न के साथ आपका एक
चत्र प्राप्त है जिसमें से आपके चित्र का ब्लाक "सूक्तरत्ना-
ली" ग्रन्थ में छप चुका है।

४. तरुण वय का एक चित्र मुनि मंगलसागरजी से
खने को मिला है।

हस्ताक्षर—

आपकी लिखी हुई अनेकों प्रतियां बीकानेर व जैसलमेर
आदि में प्राप्त है. जेसलमेर के अमृत-धर्म-स्मृति-शाला का
लेख भी आपके हस्ताक्षरों पर खुदा हुआ है।

आपके लिखित कई पत्र भी हमारे संग्रह एवं ज्ञान-
भंडार में हैं।

प्रतिष्ठा लेख—

आपने कई मंदिर, मूर्तियों, यन्त्रों आदि की प्रतिष्ठा
की थी जिनके लेख नाहरजी के 'जैसलमेर जैन लेख संग्रह'
व हमारे "बीकानेर जैन लेख संग्रह" आदि में छप चुके है।
कई प्रकाशित भी हैं।

उपाश्रय—

बीकानेर में आपने एक उपाश्रय व ज्ञान भंडार स्थापित

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

श्री नाभिपुत्रादि जिनेश्वर क्रमा-,
च्छ्रीमांश्चतुर्विंशजिनो महामहाः ।
त्रैलोक्यागारगरिष्ठ दीपको,
देवा सुरेन्द्रार्चित पाद पङ्कजः ॥१॥

सिद्धार्थं राजात्मजनुर्महामनाः,
शान्तस्तपोदान्ति निधिर्महोदयः
आसीन्महावीर इति श्रुत पुरा-
ज्जन्तोश्मातङ्ग विभङ्गकेसरी ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

—अनुवादक मङ्गलाचरण—

प्रणम्य श्री महावीरं, सर्वज्ञानविभूषितं ।
नत्वेक जिनभक्तानाम्, विधातॄन् विज्ञपूजितान् ॥१ ।
दत्तकुशलचन्द्राश्च, श्री जिन हरि सागरान् ।
अन्तर्यामिस्तुतच्छिद्रयो, निर्यायो हृष्टमानसः ॥ २ ॥
मायोयुक्तिपटुः क्षान्ता, शासनस्य प्रभावकः ।

एकादशं पट्टमितः परं मुनि-

रध्यास्त सूरीश्वर आर्यसुस्थितः ।

यः सूरिमन्त्रं परिजप्य कोटिशो,

लेभे पदं कौटिक इत्युदीरितम् ॥४॥

सुधर्मा स्वामी से ग्यारहवें पट्ट पर आर्यसुस्थित सूरि विराजमान हुए जिन्होंने एक करोड़ बार सूरिमन्त्र जपकर "कोटिक" पद प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

तस्मात्परं पञ्चदशेऽथ पट्टके,

श्री वज्रनामा मुनिचन्द्र आबभौ ।

यस्मात् प्रजाता किल भूमिमण्डले,

श्री वज्रशाखा शुभतीव कौमुदी ॥ ५ ॥

जिस प्रकार आकाश में चन्द्रमा सुशोभित होता है ठीक उसी प्रकार इस पृथ्वी पर मुनियों में श्री वज्रस्वामी १५वें पट्ट पर शोभायमान हुए, जिनसे उत्पन्न "वज्रशाखा" आज भी ज्योत्स्ना के समान भूमण्डल पर खिल रही है ॥५॥

एकाधिके षट्शतके परागते,

ऽब्दानां महावीर जिनेन्द्र मुक्तितः ।

उपाध्याय श्री राजसोमजी से कहा कि "इन सारे थियों में केवल यही विद्यार्थी (क्षमाकल्याण जी) समग्र रूप समुद्रों का मंथन कर सकेगा ॥ १७ ॥

ादि विद्वद्विहितं प्रशंसनं,

नो मन्यमानो बहुलं स तत्त्ववित् ।

ागम व्याकरणादि पारगो

ऽल्पेनैव कालेन बभूव संयमी ॥ १८ ॥

तत्त्वज्ञ संयमी क्षमाकल्याण जी महाराज ने उस पण्डित ी हुई प्रशंसा को अधिक नहीं मानते हुए वे बहुत ही समय में न्याय, व्याकरण आगमादि शास्त्रों में पारंगत ये ॥ १८ ॥

ाश्वरी देव्युपसिद्ध विद्यया,

वित्तः स आसीत् सुतरां महातपाः ।

द्रुकल्पोऽयम कल्प्यतल्पधी,

लोकैरतः कल्पितकाम जल्पनात् ॥१६॥

उन महामुनिराज ने स्वप्नेश्वरी देवी को सिद्ध कर ा था, अत एव इस विद्या के वे एक अच्छे जानकार थे लिए चाहे हुए मनोरथों के वतला देने के कारण जनता कल्पवक्ष के समान समझती थी ॥ १६ ॥

आलोक्य विद्याचरण मेन मुन्मना :,
सच्छास्त्र चुञ्चुं प्रमदेन सद्गुरु :
प्रादादुपाध्यायपदं पदार्थविद्,
योग्याय योग्यं ददते पदं बुधा : ॥

तत्ववेत्ता श्री अमृत धर्म जी ने अपने शिष्य को विद्याओं के जानने वाले एवं अच्छे शास्त्रज्ञ जानकर प्रसन्नता पूर्वक उपाध्याय पद दिया क्योंकि विद्वान् योग्य व्यक्ति को योग्य पद दिये विना नहीं रहते ॥

प्रादीक्षि कल्याणजयो महात्मना,
शिष्यो विवेकादि जयस्तत : परम् ।
सर्वार्थ साहाय्य कृतौ दृशाविव,
तौ तस्य बाहू इव वा व्यराजताम् ॥

[illegible] महात्मा ने पहले कल्याणजय जी को [illegible] [illegible] विवेक जय जी को [illegible] प्रदान किया [illegible] दोनों [illegible] [illegible] भुजाओं के [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible] [illegible],

लीलामुभौ तौ त्यजतः स्म मानवीम्
यतस्तद्वियुतो गुरुश्च स,
संवेगवर्त्मा भजता मुभावपि ॥ २२ ॥

अपने गुरु के द्वारा शिक्षित हो कर वे दोनों शिष्य
ही समय में स्वर्ग सिधार गये । उनसे वियोग पाकर
गुरु और वे (क्षमाकल्याण जी) इन दोनों ने सवेग
ग्रहण कर लिया ॥ २२ ॥

ोऽथकल्याणजयस्य नामतो,
ज्ञानादिकानन्द इति व्यधीयत ।
ा विवेकादिजयस्य नामतः,
शिष्यो गुणानन्द इति ह्कल्प्यत ॥२३॥

ज्ञाता श्री क्षमाकल्याणजी ने ज्ञानानन्द जी को कल्या-
जी का एवं गुणानन्दजी को विवेकजयजी का शिष्य
ा ॥ २३ ॥

ादिकानन्द मुनेर्व्यजायत,
शिष्यो मयाचन्द्र इतीरितो भुवि ।
द् गुणानन्द मुनेश्च संवभौ,
शिष्यो मुनि मौक्तिकचन्द्र नामकः ॥२४॥

मुनि ज्ञानानन्द जी के मयाचन्द जी एवं गुणानन्द
मोतीचन्दजी नामक शिष्य हुए ।। २४ ।।

आस्तामुभौमौक्तिकचन्द्रधीनिधे-,
शिष्यौ पनालाल मुकुन्दचन्द्रौ
श्रीमन्मयाचन्द्रमुनेश्च कोऽप्यमू-
दित्यादि तत्तद्यतीनां परम्परा ।।२

बुद्धि निधान श्री मोतीचन्दजी के पनालालजी एवं मुकु
चन्दजी नामक शिष्य हुए । मुनि मयाचन्दजी के भी
शिष्य थे ।इत्यादि उन२ मुनियों की परम्परा जानना ।।

संवर्ण्यते किञ्चन किञ्चन क्षमा--,
कल्याणसाधो विलसत्प्रभावक
वृत्तं प्रवृत्तं प्रथमं प्रथान्वितं,
त्याज्यं यतो न प्रकृतं क्रियाविदा ।।२

कार्य के जानकार विद्वान को प्रकरण की बात नहीं छो
चाहिये, अतः अब क्षमाकल्याणजी के प्रभावशाली चरित्र
वर्णन किया जा रहा है ।।२६।।

क्रयन्त व्रतिना चतुर्दश,

पूर्णप्रभावा जयशल्यमेरुके ।

घ्नकं मासचतुष्टयासना:[1],

पार्थक्यरीत्यासकले स्वजीवने ।।२७।।

ा क्षमाकल्याणजी म. ने अपने जीवन में चौदह प्रभाव-
चौमासे जैसलमेर में निर्विघ्न समाप्त किये ।।२७।।

ष्टभूलोकपभूमितेऽब्दके,

षाण्मासिको योग इहादधेऽमुना ।

तदीय: परमोत्सवो जनै-,

रर्हन्समर्हादिभवो व्यधीयत ।।२८।।

सलमेर में उन्होंने विक्रम सं. १८१८ में ६ मास के योग
पूर्णाहुति पर वहाँ के संघ ने जिनेन्द्र पूजादिक से बड़ा
उत्सव किया ।।२८।।

भैरवाज्ञात्किल तत्र सर्वतो-

भद्रं सुयन्त्रं जगृहे महामुनि: ।

चातुर्मास स्थितय: ।

ढक्कां समानाययतु द्रुतं भवान्,

यन्नादतो यान्ति विपक्षपक्षिणः ॥

राजा के वचन सुनकर समर्थ क्षमाकल्याण जी ने कहा कि हे राजन्! सुनिए, आप शीघ्रता से नगाड़ा मंगवाईये, जिसके बजाने से शत्रु रूप पक्षी भाग जायेंगे ॥४२॥

श्रुत्वैवमुत्साहकमेतदीरितं,

ढक्कां स आनाययति स्म तत्क्ष

उल्लिख्य यन्त्रं तदुपर्यमुं क्षमा-

कल्याण आख्यादिति रावलं नृपम् ॥४

इस प्रकार के उत्साह वर्धक उन मुनि श्री के वचन सुनकर राजा रावल ने उसी क्षण धौंसा मंगवाया। कल्याणजी ने उस धौंसे पर यन्त्र लिख कर रावलजी को कहा। ॥४३॥

आक्रोशतो भूपतिवर्य! वाद्यतां,

ढक्का प्रगाढं मुदितेन चेतसा

यन्त्र प्रभावात् किल कान्दिशीकतां,

शत्रुव्रजा यास्यन्ति, नात्र संशयः ॥४

1 [illegible]

राधिपति ! इस पांसे को शत्रु स्थान से एक कोस
चित होकर फेंकवाइये। यन्त्र के प्रभाव से सारी
तितर-बितर हो जावगी, इसमें संदेह नहीं ॥४४॥

शार्चं कथितां महात्मना,
राजा तथैव प्रमदादनुष्ठितम् ।
न्यो रणभूमितो भ्रयात्,
दानुद्विकुर्वाण नृपो यदातदा ॥४५॥

मनिराज के इस प्रकार के वचन सुनकर रावलजी
र किया, तत्क्षण ही शत्रु-सैन्य रण भूमि से भाग
, तब राजा रावल को अत्यन्त हर्ष हुआ ॥४५॥

दारभ्य स रावलो नृप,
आसीत् कृतश्रद्ध उरुप्रभे मुनौ ।
वे मण्डल ईक्षिते वरं,
लोकैः प्रकाशे न हि किं प्रतीयते ॥४६॥

से राजा रावल उन महा प्रभावशाली, सूर्य समान
मुनि श्री पर पूर्ण श्रद्धा रखने लगे । जब सूर्य को
ति देख लिया जाय तो जन समूह उसके प्रकाश में
देख सकते ? ॥४६॥

द्र! संवत्सरसप्तकं खलु,

स्वायुः समाप्तो प्रतिपद्यतां पुरः ॥४६॥

-मण्डल-श्रेष्ठ, गुणी उस ज्योतिषी ने राजा के वचन र गणित करके कहा कि महाराज ! अपनी आयु की प्ति में सात वर्ष और जानिए ॥४६॥

ेति तं चारु परीक्षितुं क्षमा-

कल्याणमाप्रष्ट मुनिं महीश्वरः ॥

नो प्रसुप्तस्तत एव निश्चयतो,

स्वप्नेऽशृणोत् सप्तदशेति भाषितम् ॥५०॥

ह सुन रावलजी ने पूर्ण परीक्षा के लिये क्षमाकल्याणजी से पूछा! रात को ध्यानी वनकर सोये हुए उन महामुनि वप्न में "सत्रह" ऐसा सुना ॥५०॥

पाण्डुवस्त्राणि दधत् प्रगे मुनिः,

कक्षे च धर्मध्वजमुद्वहन् दृढन् ।

कत्र हस्ते मुखवस्त्रिकां दध—,

दन्यत्र दण्ड विपुलं ययौ नृपम् ॥५१॥

ज्ञा ने यह सुनकर अपनी सभा में उन मुनिराज की
प्रशंसा की। तब से लेकर राजा ने उन्हीं को ही
माना, अपितु उनकी वाणी को भी मान्य किया एवं
१७ वर्ष ही जीवित रहकर स्वर्ग–सिधारे ॥५३॥

कदा प्रार्थनयाऽथ मक्षुदा–,
बादं ययौ, तत्र निजोपदेशनैः।
ोध्य सद्भक्त जनानतोषय,
च्चन्द्रश्चकोरानमृतद्रवैखि ॥५४॥

सी समय मक्षुदावाद संघ की विनती को स्वीकृत कर
श्री वहाँ पधारें। जिस प्रकार चन्द्रमा चकोरी को
अमृत रसों से प्रसन्न करता है, ठीक उसी प्रकार
भावगर्भित उपदेशों से मुनि श्री ने भक्त जनों को धर्म
समझाकर प्रसन्न किया ॥५४॥

र्णवाष्टेन्दुमितेऽथ वत्सरे,
बालोच्चरे मास चतुष्टय स्थितिम्।
ुनीशो भगवत्यभिख्यया,
ख्यातं च तत्राऽऽख्यत सूत्रमुत्तमम ॥५५॥

र बनाया तत्पश्चात राजस्थान देश में पधारे, वहां
बार जोधपुर भी पधारे ॥५७॥

व संप्रार्थनयांनृणां चतु-
र्मासाधि वासं द्रढयाञ्चकार सः ।
ख्यानं दानादिभिरन्वतोषय-
त्तत्रत्य लोकान्नितरां महामुनिः ॥५८॥

वहीं पर (जोधपुर में) लोगों की प्रार्थना से चौमासा
श्चित कर लिया । इन्होंने व्याख्यानादि से वहां के लोगों
खूब आनन्दित किया ॥ ५८ ॥

त्राय पूर्वं गुणगन्धमुत्तमम्,
श्रीमानसिंहोऽलिरिव क्षितीश्वरः ।
तोदमेतत्सुमनोऽन्तिकाश्रयं,
स्वं पण्डितं चित्तमिव व्यसर्जयत् ॥५६॥

वहां के राजा श्रीमान् मानसिंहजी ने इनके गुण-गन्ध
त कर अपने पण्डित को इनके पास भेजा । जैसे- भौंरा
न्ध पाकर अपने जी को सुगन्धित पुष्प के पास भेज
ा है ॥ ५६ ॥

अत्र सुमनः शब्देन सहृदयो मुनिः, सुमनसः पुष्पं चेत्यर्थद्वयं
——— ॥

तो विक्रमपत्तनं ययौ,

श्री शूरसिंहश्च तदीशितैकदा ।

मैहिष्ट, पर स सूरतं,

प्रातिष्ठताऽहो बलवत्तरो विधिः ॥६२॥

ात् मुनि श्री का बीकानेर में आगमन हुआ। वहां के
ी शूरसिंहजी आपसे मिलना चाहते थे किन्तु मुनि
उसी दिन प्रातःकाल में सूरत की ओर रवाना हो
। अहो ! दैव बड़ा बलवान् है॥६२॥

ब्रहानोपपदे पुरे स्थिते,

पार्श्वं मनोमोहनमैच्छ दीक्षितुम् ।

र भूयान् सहगाम्यभूज्जनो,

धर्मे हि साहाय्यलभा सतां भवेत् ॥६३॥

ते में आये हुए ब्रहानपुर में मुनिराज को मनमोहन
ाथ का दर्शन करने का मन हुआ, गांव से थोड़ा दूर
चलते समय बहुत से लोग साथ हो गये क्योंकि धर्म-
ं सज्जनों को सहायता मिल ही जाती है ॥६३॥

श्वेव गतेष्वहः सु सहसाऽऽयातं पुराद् वैक्रमाद्,
व्यासः पत्रमवाप्य यावदचिरात् संवाचयत्युत्तमम् ।
तत् स प्रकटाक्षरं धृतमनाः सम्यग् बुबोध क्षमा-
ल्याणस्य महामुनेः सुरपुरप्रस्थानवृत्तं महत् ॥६४॥

व्यासजी को स्वगृह पहुँचे दो-तीन दिन ही बीते थे कि
कानेर से एक पत्र आया । पत्र के द्वारा जब उनको मुनि
ी क्षमाकल्याणजी म. के स्वर्गगमन के समाचार मिले, तब
विचार करने लगे ॥६४॥

द्‌त्त मेवमवगम्य स नम्रमूर्ति-
श्चित्तेऽन्वचिन्तदिति चिन्तितापसान्तः ।
ाह श्वतुष्कमपि दृष्टवतोऽद्य तं मे-
ऽतीतं, स विश्रमपुरं कथमाप्य शास्येत् ? ॥६५॥

आश्चर्यचकित, नम्रमूर्ति व्यासजी ने इन दुःखित मना-
ागों को प्रकार विचार करने लगे, "मैंने मुनि श्री को
गुरु चार दिन पूर्व ही देखा था, फिर इतने अल्प-समय में
ुनि श्री कैसे बीकानेर पधार सकते है? ॥६५॥

कारण पिताजी एवं अन्यान्य बन्धुओं के द्वारा काफी स
भाने पर भी मैंने विवाह नहीं किया ॥१०३॥

अतीतवत्यथ समये कियत्यपि,
स्वसु[1] श्चिराद् विहितमहाग्रहा दहम्
समागमं जयपुरमेतदुत्तमा-
पणावलीविपणिगृहाध्वशोभितम् ॥१०४

मेरी बहिन का निवास-स्थान यहां है, एवं उसी आग्रह वश, बाजारों, दुकानों और मकानों से सुशोभित जयपुर नगरी में मैं आया हूं ॥१०४॥

स्थितो भवान् क्व सुकृतवान् प्रकृष्टधी[2]-
रहं पुनः क्व कलुषवान् निकृष्टधी[3]
मया महामणिरिव संगतो भवान्,
पुरा कृतं किल सुकृतं शुभं फलेत् ॥१०५

कहां तो पुण्यवान एवं उच्च बुधि धारक आप, औ कहां पापी एवं अधम बुद्धि वाला मैं !

---

1. स्वसा भगिनी तस्य ।
2. प्रकृष्टा धीर्यस्य सः ।
3. निकृष्टा धीर्यस्य सः ।

...प मुझे प्राप्त हो गये है, इसे मैं
कृत पुण्य ही मानूंगा ॥१०५॥

हयतिमे मनो मुने !
गृहं त्यजाम्यथ भवतो व्रतं भजे ।
दति गुरो ! स्पृहा द्रुतं,
सुसाधय नयपरहितं हि साधवः ॥१०६॥

नन में अब गृह के प्रति तनिक भी स्पृहा नहीं रह
: मैं अब आपके पास से संयम ग्रहण करना
आप परोपकारी है, अतः मेरी इच्छा शीघ्र ही
गये। ॥१०६॥

ो जनयतु मे सुमंगलं,-
न्यपामृतावपि खलु दीयतां व्रतम् ।
सन्, न तु न्निरयेत् सुकर्मणे,
कुलोऽप्यहो इह खलु विघ्न आपतेत् ॥१०७॥
जानता हूं कि हे गुरूदेव ! चौमासा चल रहा है, फिर
ाप श्री "शुभस्य शीघ्रम्" की उक्ति के अनुसार शीघ्र

स्पृहा वाञ्छा यस्य स तम् ।

नूमतेव खलु शोभेन शंभिना,
समन्वितो मुनि गुणसागरेण सः ।
द्धमंतो बहुनगराणि शोधयन्,
कुकर्मतो भविपुरुषांश्च मोचयन् ॥११३॥

तपोभरंजिनवृषभं प्रतर्पयन्
वचोऽमृतैः शुभमुपदेशमर्पयन् ।
अनेकशस्तनूमत ऋद्धिसागरो,
गुरुर्गणी गुणनृदबोधयत्तराम् ॥११४॥ 'युग्मम्'

स्व-शिष्य, शान्ति की प्रतिमूर्ति श्री गुणसागरजी के साथ गणिवर्य श्री ऋद्धिसागर जी म. ग्रामानुग्राम विहरण करने लगे । नगर २ में अपने निर्मल उपदेशों द्वारा जिन-वाणी का प्रचार करते एवं लोगों को कुकर्मों से हटाते ।

इस प्रकार महा तपस्वी गुणवान गणी गुरु शान्ति गुणवान् व्यक्तियों के समूह में प्रमुख ऐसे श्री ऋद्धिसागरजी म. ने अनेक प्राणियों को प्रति बोध दिया । ॥११३-११४॥

गुरेक्षसाङ्कशशिमितेऽथ हायने,
फलवर्धिकापुर इह सन्महापथे ।

तदन्तिके स भगवदादिसागरो,

मुनिव्रतं व्यधरत शान्तमानसः ॥११!

जो नगर वड़े २ मार्गों द्वारा सुशोभित हो ऐसे फ़ल नगर में वि. सं १६३५ में गणिवर्य श्री ऋद्धिसागरजी म पास शान्तचित्त भगवानसागरजी म. ने दीक्षा ग्रहण की ॥११!

सुखसागरशिष्यास्तु, भगवत्सागरः क्षमा।

चिदानन्दो राम-रत्न-कल्याणश्च ततोऽभवत्॥११६

श्री सुखसागरजी म. के शिष्यों के क्रमशः ये नाम है (१) श्री भगवानसागरजी म. (२) श्री क्षमासागरजी (३) चिदानन्दसागरजी म. (४) रामसागरजी म. (५ रत्नसागरजी म. (६) कल्याणसागरजी म. ॥११६॥

भगवत्सागरशिष्या, धनसुमतिगुमानचैतन्याः।

त्रैलोक्योऽपि तथा, हरिसागर इत्येत आख्याता ॥११७॥

श्री भगवानसागरजी म. के शिष्यों के क्रमशः ये नाम है। (१) धनसागरजी म. (२) सुमतिर

ज्ञानसागरजी म. (४) चैतन्यसागरजी म. (५) त्रैलोक्य-
सागरजी म. (६) श्री हरिसागरजी म.।

श्री राजसमुद्रस्य शिष्यो यः स्थानसागरः।
तस्य शिष्यो विनीतात्माऽभवच्छगनसागरः॥११८॥

मुनि श्री राजसागरजी म. के शिष्य मुनि स्थानसागरजी
एवं उनके विनयवान् शिष्य तपस्वी छगनसागरजी म.
॥११८॥

स्वच्छतरे वरे खरतरे व्योम्नीव यः शारदे,
श्रीहरिसागरो विजयते चन्द्रो यशोज्योत्स्नया।
नन्दकविस्तदीयवचसोपाध्यायरत्नक्षमा-
णस्य मुनीश्वरस्य चरितं कल्याणमाकल्पयत्
॥११९॥

श्री कविराजानुकवि श्री नित्यानंदशास्त्रि
श्री क्षमाकल्याण चरितं समाप्तम्॥

प्रकार शरद ऋतु में आकाश पूर्णतया निर्मल होता
वैसे ही निर्मल खरतरगच्छ में वर्तमान में श्री
सा. जिस प्रकार चाँदनी

श्रीसंभवनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (३)

(स्रग्धरा-छन्दः)

[illegible]सक्तचित्ताः प्रचुरतरभवभ्रान्तिमुक्तामनुष्याः,
[illegible]ताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्य एव ।
श्रीमान् संभवेशः प्रशमरसमयो विश्वविश्वोपकर्ता,
[illegible] दिव्यशोभिः परमपदकृते सेव्यतां भव्यलोकाः! ॥१॥
[illegible]ध्यानोदकेनोज्ज्वलमतिशयितस्वच्छभावाद्भुतेन,
[illegible]प्रमादादत्य वृत्तं शिवपद निगमं कर्मपङ्कप्रपञ्चम् ।
[illegible] दूरयित्वा प्रकृतिमुपगति निर्विकल्पस्वरूपः,
[illegible]नन्तार्यध्वजोऽसौ जगति जिनपतिर्वीतरागः सदैव ॥२॥
[illegible]र्वी विद्योतिरत्नप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले,
[illegible]मित्रि शेषदोषव्यपगमविशदे श्री जितारेस्तनूजे ।
[illegible]पापो दुष्टसत्त्वैः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः,
[illegible]ल्याण श्रीनिवासो स भवति वदताऽन्यं चेनीयो न केषाम्।३।

श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (४)

(द्रुतविलम्बित-छन्दः)

विशदशारदसोमसमाननः,
कमलकोमलचारुविलोचनः
गुणः सुतरामभिनन्दन!,
जय सुनिर्मलताञ्चितभूघनः ॥१॥

श्रीअरनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम् (१८)

(रामगिरिरागेण गीयते)

दिव्यगुणधारकं भव्यजनतारकं,
दुरितमतिवारकं सुकृतिकान्तम् ।
जितविषमसायकं सर्वसुखदायकं,
जगति जिननायकं परमशान्तम् ॥ १ ।
स्वगुणपर्यायसंमीलितं नौमि तं,
विगतपरभावपरिणतिमखण्डम्
सर्वसंयोगविस्तारपारंगतं,
प्राप्तपरमात्मरूपं प्रचण्डम् ॥दिव्यगुण०॥ २ ।
साधुदर्शनवृतं भाविकैः प्रस्तुतं,
प्रातिहार्याष्टकोद्भासमानम्
सततमुक्तिप्रदं सर्वदा पूजितं,
शिवमहीसार्वभौमप्रधानम् ॥दि०॥ (त्रिभिर्विशेषकम्



श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र- चैत्यवन्दनम्

(गीतनी चाल)

कुम्भसमुद्भव संमदाकर गुणवर !
हे मल्लिजिनोत्तमदेव !, जय जय विश्वपते ! ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२०)

([illegible])

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥१॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥२॥
[illegible]
[illegible]

निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धेर्भर्ता संधर्ता,

दुर्भावानां दूरे हर्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्ता

सद्भक्तेभ्यो मुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्माता,

स्तुत्यो भक्त्या वाचोयुक्त्या चेतोवृत्त्या ध्येयात्मा ॥२॥

सम्यग्दृग्भिः साक्षाद् दृष्टो मोहाऽस्पृष्टो नाकृष्टः,

स्तोतोग्रामैः संपज्ज्येष्ठः साधुश्रेष्ठः सत्प्रेष्टः

श्रद्धायुक्तस्वान्तैर्जुष्टो नित्यं तुष्टो निर्दुष्ट–

स्त्याज्यो नैव श्रीवज्राङ्को नष्टातङ्को निःशङ्कम् ॥३॥

श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१६)

(द्रुतविलम्बित–छन्दः)

विपुलनिर्भरकीर्तिभरान्वितो,

जयति निर्जरनाथनमस्कृतः ।

लघुविनिर्जितमोहधराधिपो,

जगति यः प्रभुशान्तिजिनाधिपः ॥१॥

विहितशान्तसुधारसमज्जनं,

निखिलदुर्जयदोषविवर्जितम् ।

परमपुण्यवतां भजनीयतां,

गतमनन्तगुणैः सहितं सताम् ॥२॥

तमचिरात्मजमीशमधीश्वरं,

भविकपद्मविबोधदिनेश्वरम् ।

ांसनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (११)

(हरिणी-छन्द)

ेता गाढ़व्याप्ता सुबुद्धिपराङ्मुखी,
निजबलपरिस्फूर्त्योदशा समग्रतया मम ।
तो दूरं दुष्टा स्वनिष्ठकुदृष्टिता,
अपचितसहा सद्यो भूत्वा यदीयसुदृष्टितः ।।१।।
ुखश्रेणीहेतुर्निराकृतदुर्दशा,
शुचितरगुणग्रामावासो निसर्गमहोज्ज्वला ।
लि प्रादुर्भूता सुतत्वरुचिर्मम,
विदलितभवभ्रान्तिर्यस्याऽप्यजस्रमनुस्मृतेः ।।२।।
मतिर्दने दक्षो निरस्तजगद्व्यथः,
समुचितकृतिविज्ञानांशुप्रकाशितसत्पथः ।
गुरोर्विष्णोर्वंशे प्रभाकरसन्निभः,
स भवतु मम श्रेयांसेनः प्रबोधसमृद्धये ।।३।।

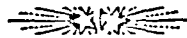
वासुपूज्यजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१२)

(रथोद्धता-छन्दः)

द्रकमनीयदीधिति–भ्राजमानमुखमद्भुतश्रियम् ।
ृष्टिमभिरामचेष्टितं, शिष्टजन्तुपरिवेष्टितं परम् ।।१।।
ष्टमतिभिर्यमीश्वरं, संस्मरद्भिरिह भूरिभिर्नृभिः
मयादनन्तरा, प्रापि सत्यपरमात्मरूपता ।।२।।

देवाधिदेव ! तव दर्शनवल्लभोऽहं,

शश्वद् भवामि भुवनेश ! तथा विधेहि ॥



श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम्

(शार्दूलविक्रीडित-छन्दः)

कल्याणाङ्कुरवर्धने जलधरं सर्वाङ्गिसंपत्करं,
विश्वव्यापियशः कलापकलितं कैवल्यलीलाश्रितम् ।
नन्दाकुक्षिसमुद्भवं दृढरथक्षोणीपतेर्नन्दनं
श्रीमत्सूरतमन्दिरे जिनवरं वन्दे प्रभुं शीतलम् ॥ १ ॥

अज्ञानविशुद्धसिद्धिपदवीहेतुप्रबोधं दधद्,
भव्यानां वरभक्तिरक्तमनसां चेतः समुल्लासयन् ।
नित्यानन्दमयः प्रसिद्धममयः सद्भूतसौख्याश्रयो,
दुर्ध्यानप्रततमः प्रणाशतरणिर्जीयाज्जिनः शीतलः ॥२ ॥

सद्भक्त्या त्रिदशेश्वरैः कृतनुतिर्भास्वद्गुणालंकृतिः,
सत्कल्याणगमूर्तिः शुभमतिः कल्याणकृत्संगतिः ।
आ[illegible] भुवनभागं गृहीतव्रतो,
भूयाद् भक्तिभृतां सदेष्टवरदः श्रीशीतलस्वामि[illegible] ॥ ३ ॥



॥श्रेयांसनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (११)

(हरिणी-छन्द)

गर्तनिता गाढव्याप्ता सुबुद्धिपराङ्मुखी,
निजबलपरिस्फूर्त्योदिता समग्रतया मम ।
नवती दूरं दुष्टा स्वनिष्कृदृष्टिता,
अगचित्तसहा सद्यो भूत्वा यदीयसुदृष्टितः ॥१॥
मसुखश्रेणीहेतुर्नि राकृतदुर्दशा,
शुचितरगुणग्रामावासो निसर्गमहोज्ज्वला ।
मले प्रादुर्भूता सुतत्त्वरुचिर्मम,
विदलितभवभ्रान्तिर्यस्याऽप्यजस्रमनुस्मृतेः ॥२॥
ामतिर्दनि दक्षो निरस्तजगद्भयथः,
समुचितकृतिविज्ञानांशुप्रकाशितसत्पथः ।
गुरोविष्णोर्वंशे प्रभाकरसन्निभः,
स भवतु मम श्रेयांसेनः प्रबोधसमृद्धये ॥३॥

वासुपूज्यजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१२)

(रथोद्धता-छन्दः)

कमनीयदीधिति—भ्राजमानमुखमद्भुतश्रियम् ।
ष्टमभिरामचेष्टितं, शिष्टजन्तुपरि
मतिभिर्यमीश्वरं, संस्मर
समयादनन्तरा.

[illegible] ।
[illegible]
॥

श्रीविमलनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१३)

(मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्)

संसारेऽस्मिन् गहनि [illegible],
त्वां सौम्यं [illegible]
दृष्ट्वा [illegible] प्रधानं,
संप्राप्तोऽहं [illegible] ॥१

ये तु स्वामिन् ! कुमतिपिहितस्फारसद्बोधमुक्ताः,
सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रेक्ष्य ते विश्वपूज्य
द्वेषोद्भूतैः कलुषितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं,
मन्ये तेषां गतशुभदृशां का गतिर्भाविनीति ॥२

श्यामासूनो ! प्रतिदिनमनुस्मृत्य विज्ञानिवाक्यं,
हित्वाऽनार्यं कुमतिवचनं ये भुवि प्राणभाजः
पूर्णानन्दोल्लसितहृदयास्त्वां समाराधयन्ति,
श्लाघ्याचाराः प्रकृतिसुभगाः सन्ति धन्यास्त एव ॥३



श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१४)

(शिखरिणी-छन्दः)

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥१॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥२॥
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥३॥ (युग्मम्)

श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (१५)

(कामक्रीडा-छन्दः)

[illegible]

कृत्याकृत्यविवेकिता जिन समुचिता ।
हे त्वयि जागर्ति जिनेश !; जय जय विश्वपते ! ॥२॥
नित्यानन्दप्रकाशिका भ्रमनाशिका ।
हे तव शुभदृष्टिरनीश !; जय जय विश्वपते ! ॥ ३ ॥
शुद्धिनिबन्धनसन्निधे सद्गुणनिधे ! ।
हे वर्जितसर्वविकार !, जय जय विश्वपते ! ॥४॥
निजनिरुपाधिकसंपदा शोभित सदा ।
हे निर्मलधर्मधुरीण !, जय जय विश्वपते ! ॥५॥

श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२०)

(अत्यगेयपद्धति-रागः)

उत्तमचेतन धर्मसमृद्ध जगत्पते !
नित्याऽनित्यपदार्थनिचयविलसन्मते ?।
निज विक्रमजितमोहमहोद्भटभूपते !
श्रीपद्मातनुजात सुजातहरिद्द्युते ! ॥१॥
श्रीमुनिसुव्रत सुव्रतदेशक ! सज्जनाः,
कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जनाः ।
ये प्रणमन्ति भवन्तमनन्तसुखाश्रितं,
केवलमुज्ज्वलभावमखण्डमनिन्दितम् ॥२॥
ते निःसंशयमेव जगत्त्रयवन्दिताः,
सद्भावेन भवन्ति सुदृष्ट्यानन्दिताः ।

श्रीअरनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम् (१८)

(रामगिरिरागेण गीयते)

दिव्यगुणधारकं भव्यजनतारकं,
दुरितमतिवारकं मुक्तिकान्तम् ।
जितविषमसायकं सर्वसुखदायकं,
जगति जिननायकं परमशान्तम् ॥ १ ॥
स्वगुणपर्यायसंमीलितं नौमि तं,
विगतपरभावपरिणतिमखण्डम् ।
सर्वसंयोगविस्तारपारंगतं,
प्राप्तपरमात्मरूपं प्रचण्डम् ॥दिव्यगुण०॥ २ ॥
साधुदर्शनवृतं भाविकैः प्रस्तुतं,
प्रातिहार्याष्टकोद्भासमानम्
सततमुक्तिप्रदं सर्वदा पूजितं,
शिवमहीसार्वभौमप्रधानम् ॥दि०॥ (त्रिभिर्विशेषकम्)



श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र- चैत्यवन्दनम् (१९)

(गीतनी चाल)

कुम्भसंमुद्भव संमदाकर गुणव
हे मल्लिजिनोत्तमदेव !, जय

इत्याकृत्यविवेकिता जिन समुचिता ।
हे त्वयि जागर्ति जिनेश ! , जय जय विश्वपते ! ।।२।।
नित्यानन्दप्रकाशिका भ्रमनाशिका ।
हे तव शुभदृष्टिरनीश ! , जय जय विश्वपते ! ।। ३ ।।
शुद्धिनिबन्धनसन्निधे सद्‌गुणनिधे ! ।
हे वर्जितसर्वविकार ! , जय जय विश्वपते ।।४।।
निजनिरुपाधिकसंपदा शोभित सदा ।
हे निर्मलधर्मधुरीण ! , जय जय विश्वपते ! ।।५।।

श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२०)

(अन्यगेयपद्धति-रागः)

उत्तमचेतन धर्मसमृद्ध जगत्पते ! ,
नित्याऽनित्यपदार्थनिचयविलसन्मते ? ।
निज विक्रमजितमोहमहोद्भटभूपते ! ,
श्रीपद्मातनुजात सुजातहरिद्द्युते ! ।।१।।
श्रीमुनिसुव्रत सुव्रतदेशक ! सज्जनाः,
कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जनाः ।
ये प्रणमन्तिभवन्तमनन्तसुखाश्रितं,
केवलमुज्ज्वलभावमखण्डमनिन्दितम् ।।२।।
ते निःसंशयमेव जगत्त्रयवन्दिताः,
सद्भावेन भवन्ति सुदृष्टयानन्दिताः ।

कृत्यं स्वोचितमेव यतः किल कारणं,
जनयति नात्मविरुद्धमिहाऽसाधारणम् ॥३॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

श्रीनमिनाथजिनेंद्र-चैत्यवंदनम् (२१)

(पञ्चचामर-छन्दः)

नमीश निर्मलात्मरूप सत्यरूप ? शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौवमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम्
विधाय मानसाब्जकोशदेशमध्यवर्तिनं,
स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदर्शितम् ॥१॥
प्रफुल्लनीलोत्पलाञ्छन ! प्रभूततेजसोऽद्य ते,
दिवाकरस्य वा महेश्वराऽभिदर्शनेन मे ।
प्रमादवर्धिनी सुदुर्मतिर्निशेव दुर्भगा,
गता प्रणाशमाशु हृत्कजे विनिद्रताऽभवत् ॥२॥
निरस्तदोषदुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवो,
भवे भवे भवत्पदाम्बुजैकसेवकः प्रभो! ।
भवेयमीदृशं भृशं मदीयचित्तचिन्तितम्,
तव प्रसादतो भवत्ववन्ध्यमेव सत्वरम् ॥३॥



श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र—चैत्यवन्दनम् (२२)

(उपजाति–छन्दः)

वेशुद्धविज्ञानभृतां वरेण, शिवात्मजेन प्रशमाकरेण ।
येन प्रयासेन विनैव कामं, विजित्य विक्रान्तनरं प्रकामम् ॥१॥
विहाय राज्यं चपलस्वभावं, राजीमतीं राजकुमारिकां च ।
गत्वा सलीलं गिरिनारशैलं, भेजे व्रतं केवलमुक्तियुक्तम् ॥२॥
निःशेषयोगीश्वरमौलिरत्नं, जितेन्द्रियत्वे विहितप्रयत्नम् ।
तमुत्तमानन्दनिधानमेकं, नमामि नेमिं विलसद्विवेकम् ॥३॥

(त्रिभिर्विशेषकम्)

श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२३)

(पञ्चचामर–छन्दः)

श्रयामि तं जिनं सदा मुदा प्रमादवर्जितं,
स्वकीयवाग्विलासतो जितोरुमेघगर्जितम् ।
जगत्प्रकामकामितप्रदानदक्षमक्षतं,
पदं दधानमुच्चकैरकैतवोपलक्षितम् ॥१॥
सतामवद्यभेदकं प्रभूतसंपदां पदं,
वलक्षपक्षसंगतं जनेक्षणाक्षणप्रदम् ।
सदैव यस्य दर्शनं विशां विमर्दितैनसां,
निहन्त्यशातजातमात्मभक्तिरक्तचेतसाम् ॥२॥

अवाप्य यत्प्रसादमादितः पुरुश्रियो नरा,
भवन्ति मुक्तिगामिनस्ततः प्रभाप्रभास्वराः ।
भजेयमाश्वसेनिदेवदेवमेव सत्पदं,
तमुच्चमानसेन शुद्ध बोधवृद्धिलाभदम् ॥३॥

श्रीमहावीरजिनेन्द्र-चैत्यवन्दनम् (२४

(पृथ्वी–छन्दः)

वरेण्यगुणवारिधिः परमनिर्वृतः सर्वदा,
समस्तकमलानिधिः सुरनरेन्द्रकोटिश्रितः ।
जनालिसुखदायको विगतकर्मवारो जिनः,
सुमुक्तजनसंगमस्त्वमसि वर्धमानप्रभो ! ॥१॥
जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारबिम्बस्थितं,
विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।
निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितोऽस्मि यद्भावनां,
जिनेश जगदीश्वरोद्भवतु सैव मे सर्वदा ॥२॥
विवेकिजनवल्लभं भुवि दुरात्मनां दुर्लभं,
दुरन्तदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परम् ।
तवाङ्घ्रि पदपद्मयोर्युगमनिन्द्यवीरप्रभो !,
प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय संपद्यताम् ॥३॥

जिनहरिसागरसूरिज्ञान प्रकाशन-६

क्षमाकल्याण-चरितम्

जोधपुर निवासिना कविराजाशुकविना
नित्यानंदशास्त्रिणा रचितम्



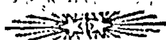
—अनुवादक एवं संशोधक—

परम पूज्य गुरुदेव, अनुयोगाचार्य १००८ श्री

कान्तिसागरजी म. सा.

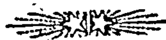
के शिष्य

मुनि श्री मणिप्रभसागरजी



—संपादक—

बंशीधर तातेड़, M.A; M.Com.



आवृत्ति	मूल्य	वि.सं.२०३६ वीर संवत्
००	१-००	२५०५ विजयादशमी

जिनहरिसागरसूरिज्ञान प्रकाशन–६

क्षमाकल्याण–चरित्रम्

जोधपुर निवासिना कविराजगुरुणा

नित्यानंदशास्त्रिणा रचितम्



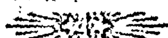
—अनुवादक एवं संशोधक

परम पूज्य गुरुदेव, अनुयोगाचार्य १

कान्तिसागरजी म.

के शिष्य

मुनि श्री मणिप्रभसागरजी



—संपादक—

वंशीधर तातेड़, M.A; M.Com.



प्रथमावृत्ति	मूल्य	वि.सं.२०३६ वीर संवत्
१०००	१-००	२५०५ विजयादशमी

नगहरिसागरसूरिज्ञान प्रकाशन—६

क्षमाकल्याण-चरित्रम्

जोधपुर निवासिना कविराजाशुकवि
नित्यानंदशास्त्रिणा रचितम्



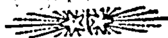
—अनुवादक एवं संशोधक

परम पूज्य गुरुदेव, अनुयोगाचार्य १

कान्तिसागरजी म.

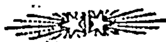
के शिष्य

मुनि श्री मणिप्रभसागरजी



—संपादक—

बंशीधर तातेड़, M.A.;M.Com.



प्रथमावृत्ति
००० | मूल्य
१-०० | वि.सं.२०३६ वीर संवत्
२५०५ विजयादशमी